

विज्ञानपरक भारतीय संस्कृति Scientific Ingredients of Indian Culture

प्रतापानन्द झा

Pratapanand Jha

प्रोफेसर एवं निदेशक (कल्चरल इन्फॉर्मेटिक्स), डीन (अकादमिक)

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, जनपथ, नई दिल्ली-110001

Email : pjha@ignca-nic-in

सारांश

ज्ञान—विज्ञान भारतीय संस्कृति का आधार है। विज्ञान, ज्ञान का वह भाग है जिसे तर्क अथवा प्रयोग के माध्यम से अन्य लोगों तक पहुँचाया जा सकता है। अध्ययन से पता चलता है कि भारतीय विज्ञान का स्वरूप काफी विकसित था एवं उसके सिद्धान्त मूल रूप में आज भी उतने ही ग्राह्य हैं। शास्त्र और प्रयोग की समानान्तर विधायें, समय के साथ, भारतीय विज्ञान को सम्पुष्ट करता रहा है। शायद यही कारण है कि भारतीय संस्कृति की अविच्छिन्न परम्परा कई सहस्र वर्ष प्राचीन है। इस लेख में कुछ उदाहरणों के साथ भारतीय संस्कृति के वैज्ञानिक पहलू को प्रस्तुत करने का एक प्रयास किया गया है।

Abstract

Knowledge and science are the foundation of Indian culture. Science is that part of knowledge that can be passed on and presented to others through logic or experiment. The study shows that the Indian sciences have evolved with time and experience. Its fundamental principles are still relevant in today's context. The parallel streams of theory and practice (experiment) have been complementing each other. Perhaps this is the reason that the tradition of Indian culture existed since over several millenia, uninterrupted. The present article is an attempt to present scientific aspects of Indian culture with some examples.-

संस्कृत वाङ्मय में ज्ञान और विज्ञान ये दोनों शब्द भिन्न—भिन्न प्रकार के अर्थों में पृथक्—पृथक् रूप में प्रयुक्त देखे जाते हैं। ज्ञान मुख्यतः तीन प्रमुख धाराओं जैसे तर्क, मनोविज्ञान और ज्ञान—मीमांसा से संबंधित है। तदनुसार ज्ञान अनुभव, अनुभाव एवं अनुभूति के माध्यम से मिलता रहा है। तर्कसंग्रह के अनुसार ज्ञान के दो भेद हैं — स्मृति और अनुभव। संस्कार मात्र से उत्पन्न ज्ञान को स्मृति और प्रयोग अथवा परीक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान अनुभव कहलाता है। ज्ञान का वह भाग जिसे तर्कों के माध्यम से प्रस्तुत किया जा सके वह विज्ञान है। अमरकोष के अनुसार —

मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः।

अर्थात् मोक्ष के सम्बन्ध में जो विचार किया जाय, उस विचार और बुद्धि को ज्ञान कहते हैं और इसके अतिरिक्त शिल्प या शास्त्र के विषय की बुद्धि को विज्ञान कहते हैं। श्रीशंकराचार्य आदि व्याख्याकारों के अनुसार, शब्द—मात्र के सुनने से जो बुद्धि होती है उसे ज्ञान और मनन एवं एकाग्रता से चित्त लगाने पर जो विशेष रूप से स्पष्ट अनुभव होता है उसे विज्ञान कहते हैं। प्रचलित भाषा में ज्ञान शब्द सामान्य रूप से जानने के अर्थ में और विज्ञान शब्द एक निश्चित सिद्धान्त के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

भारतीय संस्कृति के संदर्भ में बात करें तो संस्कृति शब्द का उल्लेख संभवतः सबसे पहले ऐतरेय ब्राह्मण में मिलता है।

आत्मसंस्कृतिर्वाव शिल्पानि । छन्दोमयं वा ।
ऐतैर्यजमान आत्मानं संस्कुरुते ।

यहाँ वर्णन है कि यह सुंदर नयनाभिराम संसार ईश्वर द्वारा रचित एक कविता मात्र है। शिल्पकार जो कुछ भी रचते हैं, वे ईश्वर की रचना का, उनकी कल्पना के अनुसार अनुसरण करते हैं। संस्कृति शब्द का एक अन्य अर्थ शोधन के रूप में आता है। शिल्प स्वयं का शोधन है। जो कुछ भी शोधन को सक्षम बनाता है, वह संस्कृति है। भारतीय मान्यता के अनुसार, प्रत्येक शोधन व्यक्ति (जीवात्मा) को परम सत्ता (परमात्मा/ईश्वर) की ओर ले जाता है।

हरिदत्त वेदालंकार के शब्दों में, "संस्कृति का शब्दार्थ है उत्तम या सुधरी हुई स्थिति। ...सभ्यता से मनुष्य के भौतिक क्षेत्र की और संस्कृति से मानसिक क्षेत्र की प्रगति सूचित होती है। ...किसी भी देश की संस्कृति उसकी सम्पूर्ण मानसिक निधि को सूचित करती है।" वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार "स्थूल जीवन में संस्कृति की अभिव्यक्ति कला को जन्म देती है। कला का सम्बन्ध जीवन के मूर्त रूप से है। संस्कृति को मन और प्राण कहा जाय तो कला उसका शरीर है।" भारतीय संस्कृति मूलतः विचार एवं व्यवहार का समन्वय है।

महर्षि पाणिनि द्वारा रचित, अष्टाध्यायी (आठ अध्यायों वाली)

संस्कृत व्याकरण का एक अत्यंत प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। वैदिक मंत्रों को संरक्षित करने के सदियों पुराने प्रयास को आगे बढ़ाते हुए, पाणिनि ने संस्कृत भाषा के तत्कालीन स्वरूप को परिष्कृत एवं नियमित करने के उद्देश्य से भाषा के विभिन्न अवयवों एवं घटकों यथा ध्वनि-विभाग (अक्षरसमाम्नाय), नाम (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण), पद, क्रिया, वाक्य, लिंग इत्यादि तथा उनके अन्तर्सम्बन्धों का समावेश अष्टाध्यायी में किया है। अष्टाध्यायी के 32 पदों को

आठ अध्यायों में समान रूप से विभक्त किया है। प्रत्येक पाद में 38 से 220 तक सूत्र हैं। इस प्रकार अष्टाध्यायी में आठ अध्याय, बत्तीस पाद और सब मिलाकर 3959 सूत्र हैं। अष्टाध्यायी पर महामुनि कात्यायन का विस्तृत वार्तिक ग्रन्थ है और सूत्र तथा वार्तिकों पर भगवान पतंजलि का विशद विवरण आत्मक ग्रन्थ महाभाष्य है। संक्षेप में सूत्र, वार्तिक एवं महाभाष्य तीनों सम्मिलित रूप में 'पाणिनीय व्याकरण' कहलाता है और सूत्रकार पाणिनी, वार्तिककार कात्यायन एवं भाष्यकार पतंजलि - तीनों व्याकरण के 'त्रिमुनि' कहलाते हैं। अष्टाध्यायी का परिमाण एक सहस्र अनुष्टुप श्लोक के बराबर है। महाभाष्य में अष्टाध्यायी को "सर्ववेद-परिषद्-शास्त्र" कहा गया है अर्थात् अष्टाध्यायी का संबंध किसी वेदविशेष तक सीमित न होकर सभी वैदिक संहिताओं से था और सभी के अभिमतों का पाणिनि ने समादर किया था। अष्टाध्यायी में अनेक पूर्वाचार्यों के मतों और सूत्रों का संनिवेश किया गया। उनमें से शाकटायन, शाकल्य, अभिशाली, गार्ग्य, गालव, भारद्वाज, कश्यप, शौनक, स्फोटायन, चाक्रवर्मण का उल्लेख पाणिनि ने किया है। पाणिनि का व्याकरण संस्कृत भाषा का अत्यन्त सूक्ष्म तथा वैज्ञानिक विश्लेषण करता है। रचना की गहनता ऐसी है कि सदियों बाद भी इसके नियमों और उपनियमों के सही अनुप्रयोग पर काम किया जा रहा है। यह उस समय की बोलचाल की मानक भाषा का तो वर्णन करता ही है, इसके साथ ही वैदिक संस्कृत और संस्कृत के क्षेत्रीय प्रयोगों का भी वर्णन करता है। यहाँ तक कि पाणिनि ने भाषा के सामाजिक-भाषिक प्रयोग पर भी प्रकाश डाला है।

भारतीय परम्परा में विज्ञान एवं गणित किसी विषय के रूप में नहीं बल्कि प्रयोग के रूप में मिलते हैं अर्थात् भारतीय परम्परा में ये विषय अन्तर्निहित हैं। जब हम अलग-अलग क्षेत्रों में गणित द्वारा निभाई गई भूमिका के बारे में बात करते हैं, तो सरलता के कारण हम समझ नहीं पाते कि हम गणित का उपयोग कर रहे हैं। हम जानते हैं कि दशमलव एवं स्थान मूल्य प्रणाली का आविष्कार भारत में किया

गया था। शून्य का आविष्कार भी भारत में हुआ, जो कि गणित का मूल है। लेकिन हमें पता नहीं है कि शुल्बसूत्रों में जटिल गणनाओं के लिए भी बहुत ही सरल तरीके प्रयोग किए जाते थे। प्राचीन शुल्बसूत्र ग्रन्थ के रूप में आज भी उपलब्ध हैं, जिनमें स्पष्ट रूप से ज्यामिति, गणित और बीजगणित में उत्कृष्ट प्रदर्शन को सूचित किया गया है।

इसी तरह वेदाङ्गों में वेदाङ्ग ज्योतिष, भारतीय खगोल विज्ञान और ज्योतिष की उत्कृष्टता को रेखांकित करता है। खगोलीय गणना के संदर्भ ऋग्वेद, तैत्तिरीयसंहिता, तैत्तिरीयब्राह्मण, तांड्य ब्राह्मण, अथर्ववेद आदि में मिलते हैं। खगोल विज्ञान का लिखित इतिहास आर्यभट्ट (475 ईस्वी) के आर्यभटीय नामक ग्रन्थ से प्रारम्भ होता है। तदुपरान्त, वराहमिहिर (505 ईस्वी) की पंचसिद्धान्तिका, ब्रह्मगुप्त (550 ईस्वी) के ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त, भास्कर I (7वीं सदी) की लीलावती, महावीर (8वीं सदी, कर्नाटक) के गणितसारसंग्रह, भास्कराचार्य (1114 ईस्वी) की सिद्धान्तशिरोमणि तथा माधव (1340-1425 ईस्वी), परमेश्वर (1360-1460 ईस्वी), नीलकण्ठ सोमयाजी (1443-1560 ईस्वी) एवं रामानुजन् (20वीं सदी) के शोधों ने इस विषय को अपने सिद्धान्तों से पुष्ट किया।

यह भी उल्लेखनीय है कि भारत में खगोल विज्ञान और गणित की विभिन्न क्षेत्रीय शैलियों का विकास हुआ। इसका उदाहरण हमें शारदा लिपि में लिखी गई 'बख्खाली पाण्डुलिपि' में मिलता है, जो कि एक उल्लेखनीय गणितीय पाण्डुलिपि है। इसी तरह क्षेत्रीय स्तर पर केरल और उड़ीसा शैली इस विषयगत परम्परा की निरंतरता को प्रमाणित करती हैं। उदाहरण के लिए, खगोल विज्ञान और गणित की केरलीय शैली चौथी से बीसवीं सदी के बीच निखरी। यह परम्परा चौथी शताब्दी में वररुचि के चन्द्रवाक्य से स्थापित हुई। सैद्धान्तिक ग्रन्थों में उल्लिखित जटिल प्रक्रियाओं का सहारा लिए बिना चन्द्र वाक्यों के माध्यम से हम सरल गणितीय गणनाओं द्वारा किसी

भी दिन चंद्रमा का सही देशांतर ज्ञात कर सकते हैं। यह विषय बीसवीं सदी तक गणित और खगोल विज्ञान के विकास में निरंतरता को इंगित करता है। यदि हम सही ढंग से विश्लेषण करते हैं, तो पाई (π) का मूल्य, वर्गमूल, अनंत शृंखला (फोरियर शृंखला), ज्या और कोज्या के मूल्य और त्वरित अभिसरण अनुमानों (फास्ट कन्वर्जेंट अप्रोक्सिमैसन्स), कुट्टक सिद्धान्त (इनडिटरमीनेट इक्वेशन) आदि विषयों के कई उद्घरण मिलते हैं, जो कि आज गणित की उच्च कक्षाओं में पढ़ाया जाता है। पाई का मूल्य, जो शुल्बसूत्र में 3.08 अनुमानित किया गया था, वह आर्यभट्ट के समय चार दशमलव स्थानों तक और रामानुजन् द्वारा 8 लाख दशमलव स्थानों तक सही पाया गया। यहाँ तक कि शुल्बसूत्रों के समय में भी, बौधायन शुल्बसूत्र से लेकर कात्यायन शुल्बसूत्र तक गणित का विकास स्पष्ट रूप से इन ग्रंथों में दिखाई देता है।

आयुर्वेद प्राचीन भारतीय चिकित्सा ज्ञान है। आयुर्वेद के अनुसार, शरीर तीन प्राथमिक दोषों अर्थात् (प) वायु (पप) पित्त, और (पपप) कफ से मिलकर बना है। दोषों के बीच संतुलन को अच्छे स्वास्थ्य और असंतुलन की स्थिति को रोग के रूप में माना गया है। प्रत्येक दोष आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी के पांच तत्त्व से प्राप्त विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करता है। भारतीय चिकित्सा मर्म पर आधारित है। इसमें उन बिंदुओं की एक शृंखला की पहचान की गई जहाँ चोट या क्षति घातक हो सकती है। जड़ी-बूटियों का उपयोग मन और शरीर के रोगों को ठीक करने और दीर्घायु प्राप्ति के लिए किया जाता है। अष्टांगहृदय आयुर्वेद की आठ शाखाओं को सूचीबद्ध करता है।

कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषान् ॥ 5 ॥

अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संश्रिता ।

वायुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ॥ 6 ॥

विकृताऽविकृता देहं घ्नन्ति ते वर्तयन्ति च ।

(अष्टांगहृदय, प्रथमोऽध्याय)

वे हैं— काया चिकित्सा (आंतरिक चिकित्सा), बाल चिकित्सा (बच्चों का उपचार), ग्रह चिकित्सा (मनोविज्ञान), उर्ध्वांग चिकित्सा (हंसली के ऊपर रोग का उपचार), शल्य चिकित्सा (सर्जरी), दमित्र चिकित्सा (विष विज्ञान), जरा चिकित्सा, और वृष चिकित्सा।

आयुर्वेद दो मुख्य शाखा आत्रेय— चिकित्सकों की शाखा और धन्वंतरि— शल्य चिकित्सकों की शाखा, के नाम से प्रचलित है। इन दो शाखाओं ने आयुर्वेद को अधिक वैज्ञानिक रूप से सत्यापित और वर्गीकृत चिकित्सा प्रणाली बना दिया। चरक और सुश्रुत आयुर्वेद के दो मुख्य पुनः संयोजक हैं, जिनके ग्रंथ आज भी उपलब्ध हैं। चरक—संहिता मुख्य रूप से एक चिकित्सा ग्रंथ है, जबकि सुश्रुत—संहिता शल्य चिकित्सा पर केंद्रित है। तीसरा प्रमुख ग्रंथ वाग्भट का अष्टांगहृदय है, जो चरक और सुश्रुत के कार्यों का एक संक्षिप्त संस्करण है। चरक संहिता में 500 एवं सुश्रुत संहिता में 700 से अधिक वनस्पति—आधारित औषधियों को सूचीबद्ध किया गया है। शल्यचिकित्सा का व्यापक रूप से उपयोग किया गया। 121 से अधिक विभिन्न इस्पात उपकरणों का उपयोग घावों को सिलने, द्रव निकालने, गुर्दे की पथरी निकालने और प्लास्टिक शल्य—चिकित्सा करने के लिए किया गया था। भारत की 70 प्रतिशत से अधिक आबादी आज भी उपचार के इस प्राचीन ज्ञान पर निर्भर है। आयुर्वेद के मूल सिद्धांत आज पश्चिम में उपयोग किए जाने वाले कई "वैकल्पिक" उपचार केंद्रों में भी दिखती हैं।

वास्तु, किसी निर्दिष्ट कार्य के लिए बनाए गए क्षेत्र में उसके विभिन्न अवयवों का सम्पूर्ण समायोजन है। वास्तु प्राचीन काल से भारतीय स्थापत्य कला का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता रहा है। वैदिक काल से प्रचलित किसी यज्ञ की यज्ञशाला हो या किसी भव्य मंदिर का प्राङ्गण, हड़प्पा और मोहनजोदड़ो की नगर स्थापत्य हो या नालन्दा वा तक्षशिला का शैक्षणिक संस्थान सभी अनुकरणीय रहे हैं। स्थापत्य और

भवन निर्माण की भारतीय कला इतनी समृद्ध थी, कि हमें आज भी हजारों वर्ष प्राचीन मंदिर उपयोग में दिखते हैं। इसके अनेक प्रमाण मयमतम्, जयपृच्छा, अपराजितपृच्छा, समराङ्गणसूत्रधार आदि ग्रंथों में उपलब्ध है। अगर हम आज की भवन निर्माण कला की बात करें तो हमें कुछ दशक में ही आज के भवनों के अनुपयोगिता का भान हो जाता है।

धातुकर्म — मनुष्य और धातुओं का सदियों पुराना संबंध है। प्रारंभिक मानव सभ्यता के विभिन्न कालखंडों का नाम धातुओं के नाम पर रखा गया है। सोने की विशेषताओं ने भारतीयों के मन और हृदय को इतना प्रभावित किया कि उन्होंने परमात्मा को हिरण्यगर्भ की उपाधि प्रदान की।

ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः।

हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः।।

(विष्णुसहस्रनाम स्तोत्र)

महाभारत और पुराणों में लोहे के तीरों का उल्लेख मिलता है। मानसोल्लास (1131 ईस्वी), मधुच्छिष्ट विधान (लॉस्ट वैक्स प्रक्रिया) द्वारा, उत्कृष्ट गुणवत्ता वाली धातु की छवि की ढलाई के बारे में विस्तृत जानकारी देता है। जिसमें सुशीरा (खोखली) और घन (टोस) दोनों प्रकार की प्रतिमाएँ हैं। यद्यपि दस्तावेजी साक्ष्य बाद की अवधि के हैं, लेकिन इसका उपयोग बहुत पहले से किया जाता रहा है। मोहनजोदड़ो की प्रसिद्ध कांस्य नृत्यांगना इसी प्रक्रिया द्वारा बनाई गई थी। शिल्परत्न (16वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में) में चित्रकला अनुप्रयोगों के लिए सोने की पतली पत्तियों से सोने के महीन पाउडर बनाने की प्रक्रिया का उल्लेख किया है।

भारतीय परंपरा में, तकनीकी विषयों में विशेषज्ञता वाले लोगों को उच्च माना जाता था। अथर्ववेद के एक मंत्र (3.5.6) में कर्मर (सामान्य रूप से लोहार या धातुकार) को मनीषी कहा गया है। इसके अलावा, काव्यमीमांसा (10 वीं शताब्दी ईस्वी) में कहा गया है कि राजाओं द्वारा सुनार, लोहार और इसी तरह के

अन्य लोगों को भी काव्य-परीक-सभा में आमंत्रित किया जाना चाहिए। इन ग्रंथों से हमें ज्ञात होता है कि कैसे प्राचीनकाल में भारतीयों ने धातु संबंधी चुनौतियों का समाधान किया, जिसने भारतीय धातु विज्ञान (प्रौद्योगिकी) के विकास में मदद की और साथ ही उस समय के लोगों में वैज्ञानिक और तकनीकी स्वभाव का भी आधान किया। अतीत की अधिकांश धातु प्रौद्योगिकियां वर्तमान समय में उसी प्रारूप में प्रासंगिक नहीं हैं, परन्तु अतीत के उदाहरण हमें सभी स्तरों पर स्थानीय नवाचारों और उद्यम को प्रोत्साहित करने की दिशा में फिर से सक्रिय कर सकते हैं। आवश्यकता है हमारे ज्ञान की विरासत के पुनरन्वेषण की और इसकी समकालीन प्रासंगिकता का आकलन करने की।

विद्युत्-शास्त्र से संबंधित सूत्र अगस्त्य संहिता में इस प्रकार है-

संस्थाप्य मृण्मये पात्रे ताम्रपत्रं सुसंस्कृतम् ।
छादयेच्छिखिग्रीवेन चार्दाभिः काष्ठापांसुभिः ॥
दस्तालोष्टो निधात्वयः पारदाच्छादितस्ततः ।
संयोगाज्जायते तेजो मित्रावरुणसंज्ञितम् ॥

तात्पर्य, एक मिट्टी के पात्र में ताम्र पट्टिका (कॉपर शीट) तथा शिखिग्रीवा (कॉपरसल्फेट) डालें। बीच में गीली काष्ठ पांसु (लकड़ी की गीली चूर्ण) लगायें, ऊपर पारा (मरक्यूरी) तथा दस्त लोष्ट (जिंक) डालें, फिर तारों को मिलाएंगे तो, उससे मित्रावरुणशक्ति का उदय होगा। वैज्ञानिकों ने इस आधार पर एक सेल बना कर मल्टीमीटर द्वारा उसको नापा। उसका ओपन सर्किट वोल्टेज 1.38 वोल्ट था और सोर्ट सर्किट करंट 23 मिली एम्पीयर। यह वर्णन इलेक्ट्रिक सेल का है। इस सेल का प्रदर्शन 7 अगस्त, 1990 को स्वदेशी विज्ञान संशोधन संस्था (नागपुर) के चौथे वार्षिक सर्वसाधारण सभा में अन्य विद्वानों के सामने किया गया। अगस्त्य संहिता में इलेक्ट्रोप्लेटिंग (बैटरी द्वारा तांबा या सोना या चांदी पर पालिश चढ़ाने की विधि) के लिए विद्युत् का उपयोग करने का भी

विवरण मिलता है। इसीलिए अगस्त्य को कुंभोद्भव कहते हैं।

कृत्रिमस्वर्णरजतलेपः सत्कृतिरुच्यते ।- शुक्र नीति
यवक्षारमयोधानौ सुशक्तजलसन्निधो ॥
आच्छादयति तत्ताम्रं स्वर्णेन रजतेन वा ।
सुवर्णलिप्तं तत्ताम्रं शातकुंभमिति स्मृतम् ॥ -
अगस्त्य संहिता

अर्थात् कृत्रिम स्वर्ण अथवा रजत के लेप को सत्कृति कहा जाता है। लोहे के पात्र में सुशक्त जल अर्थात् तेजाब का घोल इसका सानिध्य पाते ही यवक्षार (सोने या चांदी का नाइट्रेट) ताम्र को स्वर्ण या रजत से ढंक लेता है। स्वर्ण से लिप्त उस ताम्र को शातकुंभ अथवा स्वर्ण कहा जाता है।

योग - पद्मविभूषण डॉ. कपिला वात्स्यायन के अनुसार शरीर, मन और आत्मा के बीच सामंजस्य स्थापित करना ही भारतीय संस्कृति का मूल उद्देश्य है। इसके लिए अथक प्रयास करती संस्कृति अपने को समयानुसार बदलती रहती है। भारतीय कला के विभिन्न आयाम इस सामंजस्य को साकार करने का प्रयास करते हैं। अनुभवकर्ताओं का मानना है कि संगीत एवं योग अध्यात्म (इष्ट) से जुड़ने के सबसे सुगम मार्ग हैं। लेकिन क्या ये दोनों मार्ग अलग हैं? योग क्या है? योग-सूत्र के अनुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः

चित्त का अर्थ है अंतःकरण। योग में बुद्धि, अहंकार और मन इन तीनों को मिलाकर 'चित्त' कहा गया है। पतंजलि कहते हैं कि इस 'चित्त' को समझो, तो रोग और शोक की जड़ का पता चलेगा। पतंजलि मानते हैं कि सभी रोगों की शुरुआत चित्त की अतल गहराई से होती है। शरीर और मस्तिष्क पर उसका असर बाद में नजर आता है। चित्त में ही रोग और शोक उत्पन्न होते हैं जो शरीर, मन और मस्तिष्क को क्षतिग्रस्त कर देते हैं। चित्त हमारी पांचों इंद्रियों (आंख, कान, जिह्वा, नाक और जननेन्द्रिय)

से राग, द्वेष आदि अच्छाइयां, बुराइयां और प्रकृति ग्रहण करता है। वृत्तियां पांच प्रकार की होती हैं:— (1) प्रमाण (2) विपर्यय (3) विकल्प (4) निद्रा और (5) स्मृति। कर्मों से क्लेश और क्लेशों से कर्म उत्पन्न होते हैं। क्लेश पांच प्रकार के होते हैं— (1) अविद्या (2) अस्मिता (अहंकार) (3) राग (4) द्वेष और (5) अभिनिवेश (जीवन के प्रति राग और मृत्यु से डर)। इसके अलावा चित्त की पाँच भूमियाँ या अवस्थाएँ होती हैं। ये हैं:— (1) क्षिप्त (2) मूढ (3) विक्षिप्त (4) एकाग्र और (5) निरुद्ध। ऊपर्युक्त शब्दों और उनके अर्थ के विमर्श से चित्त को समझा जा सकता है। चित्त को समझने से रोग और शोक स्वतः ही हटने लगते हैं। सदा प्रसन्न रहना जीवन की सबसे बड़ी सफलता होती है। और यही विज्ञान का भी ध्येय है।

नागार्जुन शून्यवाद के प्रतिष्ठापक तथा प्रख्यात बौद्ध आचार्य थे। युवान् च्वाङ्कू के यात्रा विवरण से पता चलता है कि ये महाकौशल के अंतर्गत विदर्भ देश में उत्पन्न हुए थे। आंग्रभृत्य कुल के शालिवाहन नरेश के राज्यकाल में इनके आविर्भाव का संकेत चीनी ग्रंथों में उपलब्ध होता है। नागार्जुन ने इस शासक के पास जो उपदेशमय पत्र लिखा था, जिसे 'आर्य नागार्जुन बोधिसत्व सुहृत्लेख' के नाम से जाना जाता है, आज भी तिब्बती तथा चीनी अनुवाद में उपलब्ध है। बौद्ध धर्म की शिक्षा से युक्त यह पत्र साहित्यिक दृष्टि से बड़ा ही रोचक तथा ज्ञानवर्धक है।

नागार्जुन की दृष्टि में मूल तत्त्व शून्य है। यह शून्य कोई निषेधात्मक वस्तु नहीं है जिसको छिपाने (अपघात) की आवश्यकता हो। किसी भी पदार्थ का स्वरूपनिर्णय करने में — अस्ति (विद्यमान है), नास्ति (विद्यमान नहीं है), तदुभयम् (एक साथ ही अस्ति नास्ति दोनों) तथा नोभयम् (अस्ति नास्ति दोनों कल्पनाओं का निषेध) का प्रयोग संभाव्य है। परमार्थ इन चारों कोटियों से मुक्त होता है और इसीलिए उसके गुण-निर्देश के लिए 'शून्य' शब्द का प्रयोग हम करते हैं। नागार्जुन के शब्दों में—

न सन् नासन् न सदसत् न चाप्यनुभयात्मकम् ।
चतुष्कोटिर्विनिर्मुक्त तत्त्वं माध्यमिका विदुः ॥

शून्यवाद की सिद्धि के लिए नागार्जुन ने जिस तर्क का उपयोग किया उसके सहारे पदार्थ का विश्लेषण करते करते वह केवल शून्यरूप में टिक जाता है। इस तर्क के बल पर द्रव्य, गति, जाति, काल, संसर्ग, आत्मा, आदि तत्त्वों का बड़ा ही गंभीर, मार्मिक तथा मौलिक विवेचन करने का श्रेय नागार्जुन को है। इस मत में सत्य दो प्रकार का होता है — (1) सांवृतिक सत्य तथा (2) पारमार्थिक सत्य। पहला अविद्या से उत्पन्न व्यावहारिक सत्ता का संकेत करता है और दूसरा प्रज्ञा जनित सत्य का प्रतिपादक है। 'सांवृति' शब्द का अर्थ है अविद्या। अविद्याजनित होने से व्यावहारिक सत्य सांवृतिक सत्य के नाम से जाना जाता है। सत्य की यह द्विविध व्याख्या नागार्जुन की दृष्टि में शून्यवाद के द्वारा उद्भावित नूतन कल्पना नहीं है, प्रत्युत बुद्ध के द्वारा ही प्राचीन काल में संकेतित की गई है। बुद्ध के कुछ उपदेश व्यावहारिक सत्य के आधार पर दिए गए हैं; अन्य उपदेश पारमार्थिक सत्य के ऊपर आलंबित हैं। बुद्ध को दोनों अभीष्ट हैं —

द्वे सत्ये समुपाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना ।
लोक संवृतिसत्यं च सत्यं च परमार्थितः ॥

नागार्जुन दार्शनिक आचार्य होते हुए भी जानते थे कि व्यवहार का आश्रय लिए बिना, परमार्थ का उपदेश नहीं हो सकता और परमार्थ की प्राप्ति के अभाव में निर्वाण मिल नहीं सकता। साधारण मानवों की बुद्धि व्यवहार में इतनी आसक्त है कि उसे परमार्थपथ पर लाने के लिए व्यवहार का अपलाप नहीं किया जा सकता। व्यवहार की "असत्यता" दिखलाकर ही साधक को परमार्थ में प्रतिष्ठित करना पड़ता है। परमार्थ शब्दों के द्वारा प्रतिपाद्य वस्तु नहीं है। इसीलिए उसे अनक्षर तत्त्व के अभिधान से जानते हैं। परमार्थतत्त्व बुद्धि व्यापार से अगोचर, अविषय (ज्ञान की कल्पना से बाहर), सर्वप्रपंचनिर्मुक्त तथा कल्पनाविरहित है,

परंतु उसके ऊपर जागतिक पदार्थों का समारोप करने से ही उसका ज्ञान हमें हो सकता है।

आचार्य पिंगल का छन्दःसूत्र - आज हम अपना अधिकतर कार्य डिजिटल माध्यम में करते हैं। हमारे उपकरण चाहे वह कम्प्यूटर हो या मोबाइल, टैबलेट अथवा कैमरा सभी डिजिटल डेटा बनाते हैं। डिजिटल डेटा का भंडारण बाइट्स (मेगा, गीगा, टेरा, पीटा, एक्सा...) में होता है। हरेक बाइट आठ बिट से बनी होती है और हर बिट की वैल्यू 0 (जीरो) या 1 (वन) होता है। इसे बाइनरी कोड प्रणाली कहते हैं। कम्प्यूटर इसी भाषा में हर आदेश को समझता है चाहे वह टेक्स्ट (लेखन) हो या विजुअल अथवा निर्देश। प्राचीन भारत में आचार्य पिंगल (पाँचवीं ई. पूर्व) द्वारा रचित "छन्दःसूत्र" में अक्षर गणना के आधार पर मंत्रों का वर्गीकरण मिलता है। हमें द्वि-आधारी

अंक प्रणाली (बाइनरी नम्बर सिस्टम) का पहला ज्ञात विवरण यहीं मिलता है। इसे ह्रस्व स्वर और दीर्घ स्वर के निश्चित पैटर्न के द्वारा दर्शाया गया है। फिबोनाकी से पहले, आचार्य हेमचंद्र (1150 ई.) ने भी, अनुक्रम (Fn) से संबंधित विषय पर पहले से उपलब्ध कई तरीके गिनाए थे, जो एक-बीट और दो-बीट स्वर-चिह्नों (नोटों) से बनने वाले लयबद्ध पैटर्न को दर्शाता है।

उपरोक्त संदर्भों से स्पष्ट होता है कि ज्ञान-विज्ञान की परम्परा भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। ज्ञान की कई विधाओं को आज की वैज्ञानिक पद्धति से मापना संभव नहीं है। आवश्यकता है कि वैज्ञानिक और अन्य संबंधित विशेषज्ञ साथ में बैठकर चिन्तन करें और विज्ञान के विकास में सहायता करें, जिससे समाज का कल्याण हो सके।

श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान-विज्ञान

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ (गीता 7,2)

भगवान् कहते हैं कि अर्जुन, अब मैं तुझे विज्ञान-सहित वह ज्ञान विशेष रूप से बता देता हूँ, जिसके जान लेने पर कुछ भी जानने की बात बाकी नहीं रह जाती।

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।

ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्षयसेऽशुभात् ॥ (गीता 9,1)

अर्थात्, अब मैं तुम को अत्यंत गुप्त विज्ञान-सहित ज्ञान का उपदेश करूंगा, क्योंकि तुम अच्छे पात्र हो। गुणों में दोष खोजने की तुम्हारी प्रवृत्ति नहीं है। इन ज्ञान-विज्ञान को जानकर तुम शोक-मोहादि अशुभ प्रसंग से विमुक्त हो जाओगे।